6483

तित्थयर

सत्रहवाँ वर्ष । अगस्त १९९३ । चतुर्थ अंक

जैन भवन

तित्थयर

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १७ : अंक ४

अगस्त १९९३

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

मथुरा के जैन साक्ष्य ९९

पाण्डुलिपियों की सुरक्षा आवश्यक १११

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ११३

संकलन १२६

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या १२७

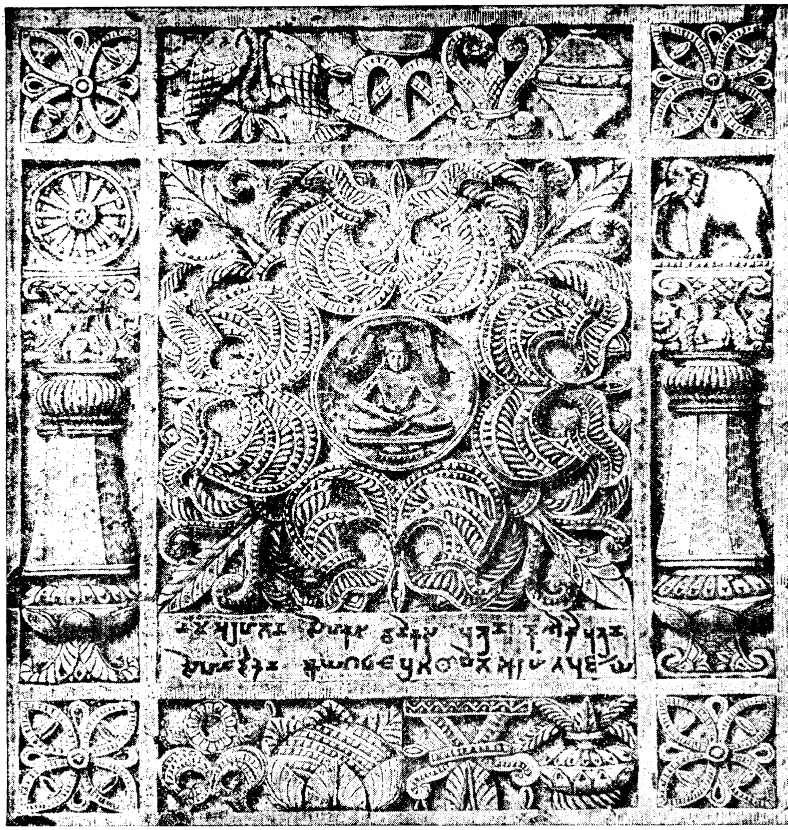

आयाग पट, मथुरा

मथुरा के जैन साक्ष्य

डा. रमेश चन्द्र शर्मा

जैन धर्म का मथुरा से सम्बन्ध :

मथुरा नगरी भारत के धार्मिक तथा आध्यात्मिक चिंतन का केन्द्र रही है। अन्य धर्मों के साथ जैन मतावलम्बियों ने भी इसे सदा से पुनीत स्थल माना है।[1] प्राचीनतम जैन साहित्य अंग सूत्रों के ज्ञाता सूत्र में मथुरा का उल्लेख द्रौपदी स्वयंवर के प्रसंग में हुआ है। तत्पश्चात् उपांग सूत्रों के पन्नवणा (प्रज्ञापना) सूत्र में २५ आर्य देशों में शूरसेन व मथुरा का वर्णन है। ५वीं शती के वसुदेवहिंडी प्राकृत कथा ग्रन्थ के शामाविजयलंभक में कंस का आख्यान है। महापुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन के अनुसार भगवान् ऋषभदेव के आदेश से इन्द्र ने जिन ५२ राज्यों की सृष्टि की उनमें शूरसेन राज्य भी था जिसकी राजधानी मथुरा थी।[2] जैन हरिवंश पुराण में शूरसेन राज्य को भारत के १८ महाराज्यों में बताया है। यह निशीथ व ठाणांग सूत्र में भारत की १० प्रमुख राजधानियों में है। इसे अरहंत प्रतिष्ठित, चिरकाल प्रतिष्ठित आदि उपाधियों से सम्मानित किया है।

सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ जी के जीवन की कोई घटना यहाँ घटित हुई होगी तभी उनकी स्मृति में प्राचीनतम स्तूप की रचना हुई। १४वें तीर्थंकर अनन्तनाथ की पूजा में भी एक स्तूप बनाए जाने की किंवदंती है। जिनसेनाचार्य का मत है कि २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ अथवा अरिष्टनेमी श्री कृष्ण के ताऊ समुद्र विजय के पुत्र थे। जिनका राज्य शौरिपुर-बटेश्वर जिला आगरा में था। नेमिनाथ व श्री कृष्ण सम्बन्धी अनेक घटनाओं का जैन हरिवंश पुराण में उल्लेख है। इसके साथ ही बलराम तथा श्री कृष्ण के साथ अंकित नेमिनाथ की प्राचीन मूर्तियां भी इस कथानक की पुष्टि करती है। परंपरा यह भी है कि २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का व्रज भूमि से प्रत्यक्ष सम्पर्क रहा क्योंकि सर्पफणों से आच्छादित उनकी अनेक प्रतिमाएं मथुरा के उत्खननों से प्राप्त हुई हैं किन्तु ऐसा सम्प्रतीत होता है कि सुपार्श्व तथा पार्श्व के ध्वनि साम्य ने कुछ भ्रांति उत्पन्न कर दी है अन्यथा पार्श्वनाथ का कार्य क्षेत्र बिहार व उत्तर प्रदेश का पूर्वी अंचल ही था।

---

१ अगरचन्द नाहटा, व्रज भारती, वर्ष ११ सं. २.

२ पर्व १६ श्लोक १५५.

२४वें और अंतिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर ने भी व्रज में विहार किया था। उस समय यहाँ का राजा उदितोदय अथवा भीदाम था जिसने न केवल महावीर का स्वागत-सत्कार किया अपितु उनसे दीक्षा भी ली।[३] आवश्यक चूर्णि में उल्लेख है कि जनपद के दो राजकुमार कंबल और शंबल उनकी सेवा-सुश्रूषा करते थे। नगर के प्रसिद्ध श्रेष्ठी जिनदत्त के पुत्र अर्हद्दास को भगवान् महावीर ने दीक्षित किया। तदनुसार अन्य व्रजवासियों का जैन धर्म की ओर झुकाव हुआ। अर्हद्दास के समय मथुरा में शरद पूर्णिमा की चांदनी में कौमुदी महोत्सव का आयोजन होता था जिसमें नगर की समस्त स्त्रियां भाग लेती थीं।

जैन धर्म के इतिहास में मथुरा का आदरणीय स्थान होने का और कारण यह है कि महावीर के पट्ट शिष्य सुधर्माचार्य के उत्तराधिकारी जम्बू स्वामी ने न केवल यहां निवास किया अपितु कैवल्य तथा मोक्ष प्राप्त कर मथुरा को सदा के लिए सिद्धपीठ बना दिया। आज भी उनकी स्मृति में चौरासी का स्थान जैनियों के लिए पुण्य तीर्थ है जहाँ जैन मुनि विहार के लिए आकर श्रोताओं और दर्शकों को सदुपदेश से लाभान्वित करते हैं। आवश्यक चूर्णि से ज्ञात होता है कि आर्यरक्षित ने मथुरा में भूतगुहा नामक चैत्य में विहार किया और आर्य मंगु देहावसान के पश्चात् निद्धवण यक्ष बने।

जैन आगमों को लिपिबद्ध करने के लिए प्रसिद्ध सरस्वती आंदोलन का सूत्रपात मथुरा से ही हुआ और शनैः-शनैः समस्त भारत में व्याप्त हो गया। इस आन्दोलन के फलस्वरूप प्रथम शताब्दी ई. से ही ग्रन्थों का प्रणयन आरंभ हो गया और अब जैन साहित्य का विपुल भण्डार उपलब्ध है। चौथी शताब्दी में अंग साहित्य को सुव्यवस्थित करने के लिए आर्य स्कंदिल की अध्यक्षता में यहाँ एक सभा हुई जिसे माथुरी वाचना कहते हैं (नन्दी चूर्णी)। बृहत कल्प-भाष्य में उल्लेख है कि व्रज के ९६ गांवों में अर्हतों की मूर्तियां स्थापित की जाती थीं और शुभ चिह्नों का अंकन होता था। इनका उद्देश्य भवनों को स्थायित्व प्रदान करना था।[४]

१४वीं शताब्दी में जिनप्रभ सूरि द्वारा लिखित मथुरापुरीकल्प का निम्नलिखित अंश जैन धर्म के मथुरा से सम्बन्ध की सुन्दर व्याख्या करता है :

---

३ प्रभुदयाल मीतल, व्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, पृ. ५४.

४ डा. ज्योति प्रसाद जैन, 'मथुरा में जैन धर्म का उदय और विकास', व्रज भारती, वर्ष १५ अंक २, पृ. १२.

इस मथुरा नगरी में भावी तीर्थंकर कृष्ण वासुदेव ने जन्म लिया था। आचार्य आर्य मंगु भूत यक्ष, हुंडिय यक्ष और चोरजीव के यहाँ देवालय हैं। यहाँ पाँच स्थल है—अक्कस्थल, वीरस्थल, पद्मस्थल, कुशस्थल और महास्थल। यहाँ बारह वन हैं—लौहजंघवन, मधुवन, बिल्ववन, तालवन, कुमुदवन, वृन्दावन, भंडीरवन, खदिरवन काम्यकवन, कौलवन, बहुलावन और महावन। यहाँ पाँच लौकिक तीर्थ हैं—विश्रान्तिक तीर्थ, सिकुंड तीर्थ, बैंकुंठ तीर्थ, कालिंजर तीर्थ और चक्रतीर्थ। यहाँ वर्द्धमान के जीव अपरिमित बलसंयुक्त विश्वभूति का अंत हुआ था। यहाँ यमुना में वंकयमुन राजा के उपसर्ग से दण्ड नामक अनगार केवल ज्ञान को प्राप्त होकर इन्द्र द्वारा पूजित हुए थे। यहाँ राजा जितशत्रु के पुत्र कालवेशित मुनि ने अर्शरोग से पीड़ित होकर मुग्दलगिरि में उपसर्ग सहन किया था। यहाँ शंख राजर्षि के तपतेज से प्रभावित होकर गजपुर के सोमदेव ब्राह्मण ने जिन दीक्षा ले ली थी। यहाँ निवृति नामक राजकन्या को सुरेन्द्रदत्त ने राधाबेध करके स्वयंवर में वरा था। यहाँ कुबेरदत्ता, उसकी माता कुबेरसेना और भाई कुबेरदत्त को अठारह नातों की कथा से संबोधा गया था। यहाँ श्रुतपारंगत आर्यमंगु ने साधुओं को प्रतिबोधा, कंवल और शंबल जिनदास के संसर्ग से प्रतिबुद्ध होकर नागकुमार हुए, मुनि अग्निकापुत्र ने पुष्पचूला को प्रव्रज्या ग्रहण कराई, मिथ्यादृष्टि इन्द्रपुरोहित ने पदाघात द्वारा साधु का अपमान किया और पश्चात्तापपूर्वक उनका भक्त हो गया। इन्द्र ने आर्यरक्षित सूरि की वन्दना की। यहाँ वस्त्र पुष्यमित्र, घृतपुष्यमित्र एवं दुर्बलिक पुष्यमित्र नामक ऋद्धिधारी साधुओं ने विहार किया। यहाँ भीषण द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष के समय आर्य स्कंदिल ने संघ को एकत्र करके आगमों का अनुयोग किया। यहाँ देवनिर्मित स्तूप में एक पक्ष के उपवास द्वारा देवता की आराधना करके जिनभद्रगणि क्षमा श्रमण ने दीमकों से खाये त्रुटित महानिशीथ सूत्र की पूर्ति की। यहाँ शंखराज और कलावती ने पाँचवें जन्म में देवसिंह एवं कनक सुन्दरी के रूप में श्रमणोपासक रहकर राज्यश्री का उपभोग किया ; इस प्रकार यह मथुरा नगर अनेक पुण्य कार्यों की जन्म भूमि है। यहाँ नरवाहना कुबेरादेवी, सिंहवाहना अंबिकादेवी और और सारमेय वाहन क्षेत्रपाल तीर्थ की रक्षा करते हैं।[५]

उपर्युक्त साहित्यिक सन्दर्भ तथा परम्पराओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तीर्थंकरों, सिद्ध मुनियों तथा आचार्यों की जन्म लीलाओं, विहार, धार्मिक प्रवचन, तपस्या, कैवल्य लाभ तथा मोक्ष प्राप्ति से पुनः पुनः

---

५ वही, पृ. १८-१९.

पवित्रीभूत ब्रज भूमि और विशेष रूप से मथुरा नगर जैनियों तथा अहिंसा मार्ग के अनुयायियों के लिए आदि काल से प्रेरणा स्रोत बना रहा है।

कंकाली टीला

स्थिति : महान आत्माओं की स्मृति में राजाओं, धनी व्यापारियों तथा जन सामान्य ने अपनी श्रद्धा व सामर्थ्य के अनुसार मथुरा तथा आसपास के अनेक स्थानों में स्मारक, स्तूप, चैत्य, मठ, विहार आदि का समय-समय पर निर्माण किया। काल गति तथा बर्बर विदेशी आक्रमणों से वे प्राचीन भवन ध्वस्त होकर टीलों के रूप में परिणत हो गये। इनमें मथुरा का कंकाली नामक टीला भारत के प्रसिद्ध पुरातात्त्विक स्थलों में माना जाता है। यह नगर के पश्चिम की ओर बी. एस. ए. कालेज तथा भूतेश्वर चौराहे के बीच स्थित है। केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग की विज्ञप्ति संख्या ७०६ एम-एस ११० एम-एस १९२७ दिनांक २७ अगस्त १९२८ द्वारा यह संरक्षित स्थान घोषित हुआ। सूची में इसकी क्रम संख्या ३२५ है। वर्तमान समय में कंकाली नामक देवी का छोटा सा मन्दिर होने से इसे कंकाली बोलते हैं। इस टीले को डॉ- स्मिथ ने ५०० ' लम्बा और ३० ' चौड़ा बताया है।[६] किन्तु कनिंघम ने ४००' × ३००' लम्बाई चौड़ाई दी है।[७] उत्खनन में ४७' व्यास का ईंटों का स्तूप और दो जैन मन्दिर मिले। किन्तु खुदाई के पूरे नक्शे आदि उपलब्ध नहीं हैं।

देव निर्मित स्तूप : इस स्थल की कीर्ति का प्रधान कारण था देव निर्मित जैन स्तूप का निर्माण। बृहत् कल्पभाष्य[८] से इसके महत्त्व को आंका जा सकता है। तदनुसार जिस प्रकार धर्मचक्र के लिए उत्तरापथ और जीवन्त स्वामी की प्रतिमा के कारण कौशल की प्रसिद्धि है उसी प्रकार देव निर्मित स्तूप से मथुरा प्रसिद्ध है। इसके निर्माण के सम्बन्ध में कुछ किंवदन्तियाँ तथा परम्परायें प्रचलित हैं। इनसे संकेत मिलते हैं कि देव निर्मित स्तूप के प्रभुत्व के विषय में बौद्ध तथा जैनों में कुछ संघर्ष हुआ किन्तु अंत में जैनों का अधिकार स्थिर हुआ (व्यवहार भाष्य) तथापि कुछ समय के लिए बौद्धों का स्वामित्व भी रहा होगा। विविध तीर्थ कल्प के अनुसार एक बार धर्म रुचि

---

६ दि जैन स्तूप एण्ड अदर एंटीक्वीटिज़ आफ मथुरा, १९०१, भूमिका, पृ.१.

७ आरक्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, खंड III, १८७१, पृष्ठ १९.

८ ५/१५३६.

और धर्मघोष नामक दो जैन आचार्यों ने मथुरा में भूतरमण नामक स्थान पर विहार किया। उनकी साधना से कुबेरा नामक देवी बड़ी प्रसन्न हुई और उन जैन मुनियों की प्रेरणा पर सोने का एक रत्नजड़ित स्तूप प्रगट (निर्मित) कर दिया जो तीन वेदिका, तीन छत्रों सहित शिखर, तोरण, माला, जिन बिम्ब, ध्वजा आदि मांगलिक चिह्नों से युक्त था। मुख्य मूर्ति सुपार्श्वनाथ की की थी। श्री अगरचन्द नाहटा ने मथुरा के जैन स्तूप के सम्बन्ध में कुछ अन्य साहित्यिक प्रमाण प्रस्तुत किए हैं।[९] तदनुसार आचार्य भद्रबाहु की ओघ-नियुक्ति में "चक्के थुभे" को टीकाकार ने "स्तूपो मथुरायो" से स्पष्ट किया है। १३वीं शती के प्रभावक चरित्र के पादलिप्त सूरि प्रबन्ध में मथुरा में 'श्री सुपार्श्व जिन स्तूपऽनमत्' वर्णन है। १३१७ ई. में खरतरगच्छाचार्य जिनचन्द्रसूरि के नेतृत्व में जैन संघ की यात्रा निकली जिसमें मथुरा में सुपार्श्व, पार्श्व व महावीर तीर्थंकरों के स्थानों की यात्रा का उल्लेख है। संगम सूरिकृत ११वीं-१२वीं शती के ग्रन्थ तीर्थमाला का यह श्लोक बड़े महत्व का है :

मथुरा पुरि प्रतिष्ठतः सुपार्श्व जिन काल संभवो जयति।
अद्यापि सूराभ्यचर्म श्री देवी विनिर्मितः स्तूपः ॥

इसी प्रकार कालान्तर के ग्रन्थों में जैन संघ की मथुरा यात्रा, सुपार्श्व स्तूप तथा अन्य देवस्थानों का वर्णन मिलता है। मान्यता यह है कि सर्व प्रथम एक ही मूल स्तूप था। कालान्तर में उनकी संख्या ५ हुई। तदनन्तर छोटे-छोटे ५२७ स्तूप बन गए जिनकी पूजा १७वीं शताब्दी तक होती रही। १५८३ ई. में साहु टोडर द्वारा ५१४ स्तूपों की प्रतिष्ठा की गई। इसके पूर्व आचार्य वप्पभट्टि सूरि ९वीं शती में ही एक पार्श्व जिनालय स्थापित कर चुके थे और एक महावीर बिम्ब भी भेजा था। ये सब पुण्य कार्य देवनिर्मित स्तूप (कंकाली) या चौरासी के आस-पास ही सम्पन्न हुए होंगे।[१०]

प्राचीनतम स्थान : साहित्य तथा अनुश्रुतियों के आधार पर इस स्थल की प्राचीनता सिद्ध करना संभव नहीं है। किन्तु पुरातत्व ने इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन किया है। उत्खनन से प्राप्त कुषाण कालीन एक मूर्ति की पीठ (लखनऊ जे. २०) पर उत्कीर्ण लेख में इसे देव निर्मित बौद्ध स्तूप बताया है, इस महत्त्वपूर्ण मूर्तिलेख को उद्धृत करना आवश्यक है :

---

९ सन्दर्भ, सं. १

१० वही, पृ ८.

पंक्ति १···सं॰ ७० ६व्र ४ दि २० एतस्यां पूर्व्वायां कोटटिये गणे वैरायां शाखाय पंक्ति २—को अय वृधहस्ति अरहतो नन्दि (अ) वर्तस प्रतिमं निर्वर्तयति, पंक्ति ३ नीचे···भार्य्यये श्राविकाये (दिनाये) दानं प्रतिना बौद्धे थूपे देव निर्मित प्र···[११]।

अर्थात् वर्ष ७६ की वर्षा ऋतु के चतुर्थ मास के बीसवें दिन कोटिय गण की वैर शखा के आचार्य वृद्धहस्ति ने अर्हत् नन्यावर्त की प्रतिमा का निर्माण कराया और उन्हीं के आदेश से भार्या श्राविका दिना द्वारा यह प्रतिमा देव-निर्मित बौद्ध स्तूप में दान स्वरूप प्रतिष्ठापित हुई।

प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी नन्द्यावर्त के स्थान पर मुनिसुव्रतस पढ़ते हैं। विचार-विमर्श में डॉ. उमाकान्त प्रेमानन्द शाह ने मत व्यक्त किया कि लेख को "प्रतिमावो द्वे थपे निर्मिते" पढ़ा जाना चाहिए। तदनुसार प्रतिमा तथा दो स्तूपों का निर्माण हुआ। कुषाण संवत् में इने उत्कीर्ण मानने पर मूर्ति का समय १५७ ई. आ जाता है। यदि यह काल गणना किसी अन्य संवत् में है तो मूर्ति और प्राचीन मानी जा सकती है।[१२] विद्वानों का अनुमान है कि इसे देवनिर्मित बताने का तात्पर्य यह है कि पहली-दूसरी शताब्दी ई. में ही यह स्थान इतना प्राचीन माना जाता था कि इसके निर्माण का इतिहास विस्मृत हो चुका था। अतः इसे देवताओं की कृति माना जाने लगा।[१३] उपर्युक्त अनेक साहित्यिक सन्दर्भों के प्रकाश में इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँचा जा समता है कि मूर्ति के अभिलेख में वर्णित देवनिर्मित स्तूप वही है जिसे देवी कुबेरा ने स्थापित किया था।

तीर्थकल्प ग्रन्थ में यह भी उल्लेख है कि पार्श्वनाथ जी के समय मूल सुवर्ण स्तूप पर ईंटों की परिधि बनवाई गई तथा बाहर पत्थर का एक मन्दिर बना। डॉ. उमाकान्त शाह का मत है कि देवनिर्मित स्तूप पार्श्वनाथ जिन की स्मृति में ही मूलतः बना होगा। जिनप्रभसूरि ने भ्रमवश सुपार्श्व लिखा है। कंकाली से प्राप्त अवशेषों में पार्श्वनाथ की मूर्त्तियां ही अधिक हैं। किन्तु हमें यह मत मान्य नहीं है क्योंकि अन्य लेखकों ने भी इसे सुपार्श्व का स्तूप माना है अतः सभी भ्रान्त नहीं हो सकते। पार्श्वनाथ जी महावीर जी के पूर्ववर्ती थे और उनका समय ८०० ई. पूर्व के आसपास माना जाता है। जिस देव

---

[११] वही.

[१२] सन्दर्भ ४, पृ. १२.

[१३] स्टडीज इन जैन आर्ट, पृ. १२ पाद टिप्पणी.

निर्मित स्तूप का पुनर्निर्माण ८०० ई. के पूर्व के आसपास हुआ वह कम से कम १०० या २०० वर्ष और पुराना अवश्य रहा होगा। इस प्रकार साहित्य तथा पुरातत्व के समन्वित अध्ययन का सरांश है कि कंकाली टीले पर स्थित देव निर्मित स्तूप की रचना का आरम्भ किसी न किसी रूप में अब से लगभग ३००० वर्ष पहले हो चुका था और यथासमय उसके स्वरूप का परिवर्तन होता रहा। इस निश्चय पर पहुँचने पर यह कहा जा सकता है कि सिंधु संस्कृति के पश्चात् मथुरा का देव निर्मित स्तूप भारत का प्राचीनतम स्मारक था। इस तथ्य से देशी तथा विदेशी सभी विद्वानों ने सहमति प्रकट की है।[१४] अतः भारतीय पुरातत्व में कंकाली टीले के जैन स्तूप का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

यह प्राचीन जैन-स्थल भारतीय कला रत्नों की खान माना जाता रहा है जहाँ से सैकड़ों की संख्या में वास्तु अवशेष तथा तीर्थंकर व देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मिली हैं। मथुरा के तत्कालीन समाज के अध्ययन में ये सांस्कृतिक अवशेष सुन्दर कोष की भूमिका निभाते हैं। यदि सिंधु संस्कृति तथा पटना के समीप लोहनीपुर से प्राप्त विवादास्पद मूर्तियों को छोड़ दें तो मथुरा की जैन मूर्तियाँ ही प्राचीनतम सिद्ध होती हैं।[१५] इन मूर्तियों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनके अध्ययन में जैन मूर्तिकला की आरम्भ से मध्यकाल तक विकास शृंखला की सभी कड़ियाँ भली-भांति गुम्फित दीखती हैं। गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही यहाँ से अवशेष मिलने आरम्भ हो गये थे। कनिंघम, हार्डिंग, ग्राउज, बर्गेस आदि ने समय-समय पर सर्वेक्षण तथा उत्खनन कर अभिलिखित मूर्तियाँ व वास्तुखण्ड निकाले। डा. फयूरर ने १८८८ से ६१ के बीच बड़े पैमाने पर उत्खनन कर सैकड़ों श्रेष्ठ तथा बहुमूल्य कृतियाँ लखनऊ संग्रहालय को भेजी। डा. विसेन्ट स्मिथ ने उत्खनन से प्राप्त इस सामग्री पर १६०१ में एक सचित्र पुस्तक प्रकाशित की।[१६] इसकी भूमिका में मूर्तियों की संख्या ७३७ बताई है। डॉ. वोगल ने भी मथुरा संग्रहालय के केटालाग पृ. १७ से स्पष्ट किया है कि १८६०-६१ केवल एक वर्ष की खुदाई से ही ७३७ मूर्तियाँ

---

१४ डा. जे. पी. जैन, दि जैन सोर्सिज आफ दि हिस्ट्री आफ एन्शिन्ट इंडिया, पृ. २३७-३८.

१५ आर. पी. चन्द्रा, आरक्यॉलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, १४२५-२६, पृ. १२४ और १८०

१६ सन्दर्भ सं. ६.

निकलीं और उन्हें लखनऊ संग्रहालय भेज दिया गया। ४७ फीट व्यास ईंटों का एक स्तूप तथा दो जैन मन्दिर प्रकाश में आए। इसके अतिरिक्त भी अनेक कलाकृतियाँ कंकाली से मिलती रहीं जिनमें कुछ मथुरा संग्राहालय में विद्यमान हैं। खुदाई से मिले अवशेषों में यद्यपि सभी धर्मों का न्यूनाधिक प्रतिनिधित्व है किन्तु जैन मूर्तियों की संख्या बहुत अधिक है। इनका काल निर्धारण दूसरी शती ई. पूर्व से लगभग १२वीं शताब्दी के बीच हुआ है। कंकाली के अधिकतर कलारत्न लखनऊ संग्रहालय में है तथा शेष भारत के अन्य तथा विदेशी संग्रहालयों में भी छिटके पड़े हैं।

आयाग पट्ट : उत्खनन से पत्थर की कुछ चौकोर पट्टियाँ मिली हैं जिनमें शुभ चिह्नों का अंकन है और कभी-कभी बीच में जिन आकृति बनी रहती है। इन्हें तीर्थंकरों की स्मृति में पूजा के निमित्त स्थापित किया जाता था। ये उस संक्रमण युग के हैं जब प्रतीकों की उपासना प्रचलित थी और मानवाकृति में महापुरुषों की मूर्तियों का श्रीगणेश हो रहा था। इन्हें प्रथम शताब्दी ई. पू. तथा पहली सती ई. के बीच मानते हैं।[१७] अधिकतर आयागपट्ट कंकाली टीले से ही उपलब्ध हुये हैं। अमोहिनी या आर्यावती तथा शिवयशा के पट (लखनऊ संग्रहालय), सिंहनादिक पट (दिल्ली संग्रहालय) और लवण शोभिका की पुत्री वसु का पट (मथुरा संग्रहालय) अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें से कुछ स्तूप की रचना का बड़ा सुन्दर चित्रण मिलता है। अमोहिनी पट को जैन धर्म की स्थिति का सबसे प्राचीन प्रमाण माना जाता है।[१८] आयाग पटों में उत्कीर्ण अष्ट मांगलिक चिह्न हैं मीनमिथुन, त्रिरत्न, चैत्यवृक्ष, सराव सम्पुट, भद्रासन, श्रीवत्स, स्वस्तिक और मंगल कलश।

तीर्थंकर प्रतिमाएँ : आयाग पट में उकेरी छोटी जिन मूर्ति का स्वतन्त्र प्रतिमाओं के रूप में विकास हुआ। प्राचीन तीर्थंकर मूर्तियों में यक्षों का पर्याप्त अनुकरण है। ये दो मुद्राओं में मिली है—पहली ध्यान भाव में आसीन और दूसरी कैवल्य की प्राप्ति के लिए दण्डवत खड़ी। युवा सुन्दर शरीर, वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न, आजानुबाहु और प्रशान्त भाव प्रमुख लक्षण हैं। कंकाली से प्राप्त ऐसी अनेक सुन्दर मूर्तियाँ लखनऊ संग्रहालय में हैं। कुषाण युगीन रचना विकासोन्मुख है और गुप्त कालीन मूर्तियों में सौष्ठव दिखाई देता है तथा प्रभामण्डलपूर्ण हैं। प्राचीन मूर्तियों में से आदिनाथ या ऋषभनाथ को कन्धे

---

१७ डा. जे. ई. वी. एल. लियू, दि सीथियन पीरियड, पृ. १५३.

१८ वही, पृ. १४७.

पर पड़ी जटाओं से और पार्श्वनाथ को सर्प फणों की छतरी से पहचाना जा सकता है। नेमिनाथ जी की मूर्तियों में कृष्ण व बलराम का प्रदर्शन रहता है। कंकाली से मिली संवत् १८ की अरिष्ट नेमि (जिन्हें नेमिनाथ माना जाता है) की प्रतिमा में कृष्ण बलराम प्रदर्शित नहीं है।[१९] शेष २३ तीर्थंकरों की मूर्तियों यदि उनका नाम अभिलेख में नहीं है तो पहचानना संभव नहीं है। सं. १९ की प्रतिमा शान्तिनाथ की है। दोनों लखनऊ संग्रहालय में हैं।[२०] मध्य युग से सभी तीर्थंकर लक्षण चिह्न अंकित होने लगे। इससे पहचानने में बड़ी सरलता हुई। मुख्य तीर्थंकर के साथ शासन देवता यक्ष-यक्षिणी की आकृतियाँ भी बनने लगीं। उक्त देवताओं की स्वतन्त्र प्रतिमायें भी मिलती हैं। मथुरा संग्रहालय की चक्रेश्वरी की मूर्ति कंकाली की अमूल्य निधि है। कुछ ऐसी प्रतिमाएँ मिली हैं जो स्तंभ के समान है और चारों ओर तीर्थंकर बने हैं। इन्हें सर्वतोभद्र या चतुर्मुखी कहते हैं। बहुत सी. प्रतिमाएँ अभिलिखित हैं और उनमें संवत्, महीना, ऋतु तथा दिवस भी दिया है। इनसे तत्कालीन जैन समाज के धार्मिक संगठन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

अन्य मुख्य कलाकृतियाँ : तीर्थंकरों के साथ ही कुछ फुटकर मूर्तियाँ व दृश्य भी महत्वपूर्ण हैं। सरस्वती की प्राचीनतम मूर्ति कंकाली से ही मिली है (लखनऊ संग्रहालय जे. २४)। इसमें देवी बाएँ हाथ में पुस्तक लिए है और दाहिना हाथ अभय में ऊपर उठा है। अभिलेख में इसे सरस्वती प्रतिमा बताया है। मथुरा से आरम्भ सरस्वती आन्दोलन को और अधिक वेग देने के लिए ऐसी प्रतिमाएँ बनी होंगी। गण, कुल, शाखा, आचार्य, वाचक, भट्टाचार आदि शब्दों से जैन समाज के सुव्यवस्थि होने का संकेत मिलता है। तीर्थंकर की लीलाओं का अंकन दुर्लभ है किन्तु कंकाली से ऐसे दो दृश्य मिले हैं। एक शुंग कालीन वास्तु खण्ड पर है जिसमें नर्तकी नृत्य कर रही है। और कुछ अन्य संगीतज्ञ वाद्ययंत्रों से संगीत में लीन हैं (लखनऊ संग्रहालय जे. ३५४)। इसमें एक नग्न साधु भी है जिसे ऋषभनाथ माना जाता है और नर्तकी है नीलांजना अप्सरा जिसने ऋषभदेव की सभा में सुन्दर नृत्य किया था। किन्तु वह भौतिक बंधनों को काट चुके थे। नृत्य के प्राचीनतम भारतीय दृश्यों में यह है। इससे वैभवशालिनी मथुरा की सुरुचिसंपन्नता का

[१९] वही, पृ. २६८-६९, आकृति ६३.

[२०] वही, पृ. २६९-७०.

आभास मिलता है। एक दृश्य में ब्राह्मणी देवनन्दा के गर्भ से क्षत्राणी त्रिशला के गर्भ में महावीर जी के भ्रूण का स्थानांतरण चित्रित है। कार्य समाप्ति के उपरांत भगवान् नेगिमेश (अजमुखी बाल-संरक्षण देवता) ने इन्द्र का वृत्तान्त बताया तो देवांगनाएं हर्ष से नाच उठीं। एक ओर वाद्य संगीत तथा नृत्य की दृष्टि से कुषाण कालीन यह फलक महत्वपूर्ण है वहीं दूसरी ओर इससे भ्रूण स्थानान्तरण जैसी बड़ी जटिल शल्य क्रिया का अनुमान लगता है।[२१] पत्थर की बड़ी व चौड़ी नालियाँ जैसी मिली हैं। अनुमान हैं कि प्रासादों में जल-व्यवस्था अथवा जल निष्कासन के हेतु इनका प्रयोग होता था। मत्स्य, मकर, स्वस्तिक, त्रिरत्न के शुभ प्रतीकों से संकेत मिलता है कि इन्हें अच्छे स्थानों में लगाया गया था।

वास्तुखंडों में वस्त्र परिधान, आभूषण, केश-विन्यास, आमोद-प्रमोद संस्कार, दैनिक जीवन आदि के दृश्यों के साथ ही विभिन्न प्रकार के वृक्ष, कमल, लता, पुष्प, गुल्म, पशु-पक्षी एवं काल्पनिक जीवों (ईहामृग) का भी मनोरम अंकन है। शुंग कालीन तोरण शीर्ष पट्टी[२२] पर एक ओर यात्रा का दृश्य है और दूसरी ओर सुपर्ण तथा किन्नरों द्वारा स्तूप का पूजन हो रहा है। भारतीय कला का यह अत्यंत उत्कृष्ट नमूना है। तोरण शालभंजिका तथा वेदिका स्तंभों पर बनी विभिन्न मुद्राओं में रमणियों की आकृतियाँ भी दर्शनीय है। कोई वृक्ष के नीचे पुष्पावचयन में लीन है अथवा प्रसाधन या पूजन सामग्री लिये प्रतीक्षा कर रही है तो अन्य के विन्यास सम्हालती है। कोई खड्ग लिए नृत्य मुद्रा में है तो अन्य निर्झर स्नान का आनन्द लूट रही है।[२३] राय पसेणि सुत्त में मथुरा के जैन शिल्प व स्थापत्य का ही विस्तृत विवरण दिया प्रतीत होता है। भारतीय प्रस्तर कला और मुख्यतः मथुरा कलाशैली के कालक्रम का निर्धारण करने में मथुरा के जैन शिल्प का विशिष्ट अवदान है। तीर्थंकर प्रतिमाएँ सैकड़ों वर्षों तक ध्यानस्थ व कायोत्सर्ग मुद्रा में बनती रहीं। अतः उनके विकास के चिह्न मात्र शरीर सौष्ठव से ही आभासित होते हैं किन्तु पीठ की रचना, सिंहों की स्थिति, लेख आदि से कला का क्रमिक विकास शीघ्र हृदयंगम हो जाता है और अनेक जटिलताओं का समाधान हो जाता है।

---

२१ सन्दर्भ सं. ६. प्लेट xviii.

२२ वही, प्लेट xv.

२३ वही, प्लेट xiii.

धर्म सामंजस्य : कंकाली टीले का अतीत धर्म सामंजस्य का ज्वलंत उदाहरण है। यदि दिगम्बर मूर्तियाँ बहुल संख्या में हैं तो अर्द्धफलक मुनियों तथा श्वेताम्बर प्रतिमाओं का सर्वथा अभाव नहीं है। रजोहरण धारी एक वन्द्यमान मुनि ने अपने नग्न शरीर को अंशतः ढकने का प्रयास किया है।[२४] लखनऊ संग्रहालय की दो मूर्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं। एक मूर्ति सं. ११३४ (१०७७ ई. लखनऊ संग्रहालय सं. जे. १४५) और दूसरी सं. ११३८ (१०८१ ई. लखनऊ संग्रहालय जे. १४३)। ये दोनों ही मूर्तियाँ संघ की श्वेताम्बर शाखा द्वारा स्थापित हुई।[२५] दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों ग्रन्थों में मथुरा का माहात्म्य है। देव निर्मित कंकाली का स्तूप दोनों को समान रूप से मान्य रहा।

कंकाली के अतिरिक्त मथुरा के अन्य कुछ स्थलों से भी जैन पुरावशेष मिले हैं जिनमें समुद्र व सागर द्वारा स्थापित आदिनाथ की स्थिर मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। गुप्त कालीन ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण अभिलेख "ऋषभस्य प्रतिमा" के कंधे पर पड़े केश और कायोत्सर्ग मुद्रा में बने तीर्थंकर को आदिनाथ पहचानना सरल हो गया। "सिद्धं ऋषभस्य प्रतिमा समुद्र सागराभ्या संगरकस्य दत्ता सागरस्य प्रतिमा।"

तथ्य तो यह है कि मथुरा का जैन समाज प्राचीन काल में सहिष्णुता के लिए आदर्श रहा है। साथ ही जाति, वर्ग, लिंग, देशी, विदेशी आदि संकीर्ण मनोवृत्तियों से भी यह ऊपर उठा था। यहाँ सैकड़ों वर्षों तक यह प्रयास रहा कि दिगम्बर आम्नायों तथा श्वेताम्बर आम्नायों की खाई पाट दी जाय। पूरे देश से जब संघ सम्बन्धी भेद जड़ पकड़ गया तब भी मथुरा ने कुछ शताब्दी तक अपने को इस संघर्ष से बचाने में सफलता प्राप्त की।[२६] मथुरा स्थापत्य भी हमें उसी उदार विचारधारा का संदेश देता है।

कंकाली में न केवल जैनों के दो सम्प्रदायों में उदार भाव बना रहा अपितु उपलब्ध अवशेष बताते हैं कि अन्य धर्मों का भी यहाँ समादर होता था। देव निर्मित स्तूप के समीप ही हमें ब्राह्मण व बौद्ध धर्मों की सुन्दर प्रतिमाएँ मिलती हैं। शुंगकाल की सर्प फणों से आच्छादित तथा हल मूसल

---

२४ वही, प्लेट vii.

२५ वही, प्लेट xciv और xcv.

२६ सन्दर्भ सं ४. पृ. १४.

लिये बलराम की मूर्ति अति प्रसिद्ध है। इसकी प्राचीनतम ब्राह्मण मूर्तियों में गणना है। शुंगकाल की ही अन्य मूर्ति में एक व्यक्ति बैल पर सवार है। संभव है कि यह वृषारोही शिव हो।[२७] कार्तिकेय की कुषाण कालीन एक सुन्दर मूर्ति कंकाली से मिली है जिसमें वह शक्ति लिए खड़े हैं। इसकी विशेषता यह है कि अभिलेख में इसे कार्तिकेय की प्रतिमा बताया है (मथुरा संग्रहालय ४२.२९४९)। इसी प्रकार उदीच्य वेष में कोट तथा जूते पहने सूर्य की कुषाण कालीन प्राचीनतम प्रतिमा मिली है (मथुरा संग्रहालय १२.२६६)। बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियाँ मिली हैं। इस प्रकार विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित कलाकृतियों से यह धारणा बनती है कि मथुरा में उस समय धार्मिक संकीर्णता नहीं थी। लखनऊ संग्रहालय के १८८९के वार्षिक विवरण में कंकाली के उत्खनन से मिली विभिन्न संप्रदायों की मूर्तियों का संक्षिप्त ब्यौरा है।[२८] एक सम्प्रदाय के अनुयायी दूसरे सम्प्रदाय का आदर करते थे। उनके देवी देवताओं की मूर्तियाँ भी कंकाली तथा आस-पास सुविधानुसार स्थापित की गईं। इस उदारवादी दृष्टिकोण का विदेशियों के मानस पटल पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ा। फलतः हम शक, कुषाण स्त्री पुरुषों को भारतीय देव समुदाय की उपासना में लीन देखते हैं। उन्होंने यदि सैन्य बल से भारत को जीता तो मथुरा की सहिष्णु संस्कृति और जैनों की अहिंसा वृत्ति ने उनका हृदय जीत लिया।

---

२७ सन्दर्भ सं. ६, प्लेट cii.

२८ वही, पृ. २-३.

पाण्डुलिपियों की सुरक्षा आवश्यक

डॉ० ऋषभचन्द्र फौजदार

जैन परम्परा में शास्त्रों का विशेष महत्व है। यहाँ स्वाध्याय को तप कहा गया है। स्वाध्याय के लिए शास्त्र आवश्यक है। हमारे पूर्व शास्त्र स्वयं लिखे। दूसरों के लिए प्रेरित किया। अपना धन व्यय शास्त्र लेखन कराया। प्रचार-प्रसार के लिए शास्त्र एक स्थान से दूसरे तक भेजे। शास्त्र-भण्डार स्थापित किये। अन्य धर्मात्माओं को प्रेरणा उनसे भी शास्त्र-भण्डार स्थापित करवाये। उनमें संग्रह के लिए शास्त्र व्यवस्था की। दान के भेदों में शास्त्रदान का विशेष स्थान है। शास्त्र में कौण्डेश का दृष्टान्त प्रसिद्ध है।

शास्त्रदान पुण्य का प्रधान कारण माना गया है। इसीलिए एक शास्त्र की अनेक प्रतिलिपियां करायीं जाती थीं। श्रावक जन, राजे-मह या श्रेष्ठि जन, यश तथा पुण्य लाभ के लिए शास्त्र लिखवाते थे। शास्त्रभण्डारों तथा मन्दिरों में सुरक्षित रखवाते थे। इससे उन्हें यश मि था। पुण्यार्जन होता था। शास्त्रों की सुरक्षा होती थी। धन का सदु भी होता था। दक्षिण भारत की एक धर्मात्मा नारी अत्तिमब्बे पोन शान्तिपुराण की एक हजार प्रतियाँ तैयार कराकर वितरित करायी उस देवी ने सुवर्ण और रत्ननिर्मित डेढ़ हजार जिनमूर्तियाँ भी बन प्रतिष्ठित करायी थीं। उक्त कार्य उसने अपना धन व्यय करके सम्पन्न कि

पुण्य प्रधान तथा सातिशय महत्त्व के कारण समाज के प्रायः प्रत्येक ने शास्त्र संग्रह किया। उदाहरण स्वरूप साधुओं के संग्रह, भट्टारकों के मठों के संग्रह, मन्दिरों के संग्रह, राजाओं के संग्रह, श्रेष्ठियों के संग्रह सामान्य श्रावकों के संग्रह आज भी प्राप्त होते हैं। प्रत्येक प्राचीन जिनम में शास्त्रों की सैकड़ों प्राचीन पाण्डुलिपियां उपलब्ध हैं। शायद ही ऐसा जिनमन्दिर होगा, जिसमें पाण्डुलिपियां उपलब्ध न हों। किसी-मन्दिर में तो इनकी संख्या हजारों में है। किन्तु अधिकांश शास्त्रभण्डा इनकी समुचित देखरेख नहीं हो पा रही है। कहीं इन्हें चूहे खा रहे कहीं दीमक चाट रही हैं। कहीं चोरी-छिपे पूरा शास्त्र या उनका मह अंश बेचा जा रहा है। यह गंभीर चिन्ता का विषय है। इस ओर ध्यान जाना चाहिये।

भारत को पाण्डुलिपियों का देश कहा जाता है। क्योंकि यहाँ विश्व की सर्वाधिक पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं। भारत की इस बहुमूल्य सम्पदा से विदेशी लोग अत्यधिक प्रभावित रहे हैं। सैकड़ों विदेशी पाण्डुलिपियों के अध्ययन हेतु भारत आये। यहां उन्होंने पाण्डुलिपियों का भरपूर उपयोग किया। अन्त में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व की पाण्डुलिपियां येन-केन प्रकारेण अपने-अपने देश ले गये। आज ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में लाखों भारतीय पाण्डुलिपियां मौजूद हैं। वहां वे भारत से बेहतर व्यवस्था में सुरक्षित हैं। यही नहीं अनुसन्धान हेतु उनकी प्रति-लिपियां प्राप्त करना सरल है। इसके विपरीत अपने ही देश के सरकारी-गैरसरकारी और व्यक्तिगत संग्रहों से अनुसन्धान हेतु पाण्डुलिपि, उसकी जीराक्स प्रति या माइक्रोफिल्म प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है।

देवदर्शन हमारी दैनिक क्रिया का प्रमुख अंग है। हम प्रतिदिन देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करते हैं। उन्हें अर्घ्य चढ़ाते हैं। यथार्थ में हमारी यह दैनिक क्रिया केवल देव (जिनदेव) तक ही सीमित रह गई है। देव मन्दिर के स्वाध्याय कक्ष में विराजमान शास्त्र की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। जिनका ध्यान जाता है, वे उनकी धूल साफ करने में स्वयं को गौरवहीन समझते हैं। परिणामस्वरूप-शास्त्र सम्पदा नष्ट-भ्रष्ट हो रही है। इस दिशा में ठोस कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता है। जैन समाज के पास भारत की सर्वाधिक पाण्डुलिपियां हैं। किन्तु उनकी सुरक्षा के प्रति समाज उदासीन है। समाज पर अनेक जिम्मेदारियां हैं। देव, शास्त्र और गुरु की रक्षा एवं संवर्द्धन उसका प्रमुख कर्त्तव्य है। इसके लिए अब युवा पीढ़ी को आगे आना चाहिये। उसे इस अमोल धरोहर की सुरक्षा के लिए क्रान्तिकारी कदम उठाने का संकल्प करना चाहिये। युवा पीढ़ी को समाज के अनुभवी बुजुर्गों, विद्वानों और साधु संस्था का विशेष मार्गदर्शन मिलना चाहिये। यही मेरा नम्र निवेदन है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

वैताढ्य पर्वत पर कांचनपुर नामक एक नगर है। वहाँ विद्याधर राज कनकरथ राज्य करते थे। उनके मन्दाकिनी और चन्द्रमुखी नामक दो कन्याएँ थी। उन्होंने उनके स्वयम्बर का आयोजन किया उसमें पुत्रों सहित राम-लक्ष्मणादि बड़े-बड़े राजाओं को आमंत्रित किया। सभी स्वयम्बर मण्डप में एकत्रित हुए। मन्दाकिनी ने अनंग लवण को और चन्द्रमुखी ने मदनांकुश को स्वेच्छा से वरण किया। यह देखकर लक्ष्मण के २५० पुत्र क्रुद्ध होकर युद्ध के लिए तत्पर हो गए। यह सुनकर लवाणांकुश बोले, 'उनके साथ युद्ध कौन करेगा? हम नहीं करेंगे। कारण वे हमारे भाई हैं इसलिए अवध्य हैं। जिस प्रकार राम लक्ष्मण में छोटे-बड़े का कोई पार्थक्य नहीं है, उसी प्रकार हमलोगों में भी पार्थक्य रहना उचित नहीं है। गुप्तचरों ने लक्ष्मण के पुत्रों से जाकर यह बात कही। लक्ष्मण के पुत्रों ने यह सुनकर अकृत्य विचार के लिए स्वयं की निन्दा की और वैराग्य प्राप्त कर माता-पिता की आज्ञा लेकर महाबल मुनि से दीक्षित हो गए। अनंगलवण और मदनांकुश दोनों कन्याओं से विवाह कर बलभद्र और वासुदेव के साथ अयोध्या लौट आए।

एक दिन राजा भामण्डल अपनी नगरी के राज-प्रासाद की छत पर बैठे थे। बैठे-बैठे उन शुद्ध बुद्धि वाले के मन में यह विचार आया वैताढ्य की उभय श्रेणियों पर मेरा अधिकार है। अस्खलित गति से क्रीड़ा करता हुआ मैं सर्वत्र विहार कर सांसारिक सुखभोग करता हूँ। अब दीक्षा ग्रहण कर पूर्ण वांछित बनूं। ऐसा विचार करते समय आकाश से उनके मस्तक पर बिजली गिरी। फलतः वे उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो गये और देवकुरु में जाकर युगलिक रूप में उत्पन्न हुए।

एक बार हनुमान शाश्वत चैत्यों की वन्दना करने मेरु पर्वत पर गए। वहाँ उन्होंने सूर्य को अस्त होते देखा। यह देखकर वे सोचने लगे – अहो इस संसार में उदय और अस्त सभी का होता है। सूर्य का दृष्टान्त इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस नाशवान जगत को धिक्कार है। ऐसा सोचते हुए हनुमान स्व नगर को लौट गए। वहाँ जाकर उन्होंने स्व पुत्र को राज्य देकर धर्मरत्न आचार्य से दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके साथ अन्य साढ़े सात सौ

राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण की। उनकी पत्नियों ने भी लक्ष्मीवती आर्या से दीक्षा ले ली। अन्ततः हनुमान मुनि ने ध्यान रूपी अग्नि में समस्त कर्मों को दग्ध कर शैलेशी अवस्था में मोक्ष गमन किया।

हनुमान की दीक्षा लेने की बात राम ने सुनी। वे सोचने लगे भोग सुखों *का त्याग कर हनुमान ने कष्टदायक दीक्षा किस प्रकार ग्रहण कर ली?* सौधर्मेन्द्र राम के इस विचारों को अवधि ज्ञान से जान कर स्व सभा में बोले, 'ओह! कर्मों गति बड़ी विचित्र है। राम-से चरम शरीरी मनुष्य भी इस समय धर्म पर अविश्वास कर रहे हैं। किन्तु इसका कारण है राम और लक्ष्मण का प्रगाढ़ प्रेम। राम के हृदय में लक्ष्मण के प्रति जो स्नेह है वह उनमें वैराग्य वृत्ति को उत्पन्न नहीं होने देता।

इन्द्र की बात सुनकर सुधर्मा देवसभा में दो देव कौतुकवश राम लक्ष्मण के प्रेम की परीक्षा लेने अयोध्या गए। वे लक्ष्मण के प्रासाद में गए। वहाँ उन्होंने लक्ष्मण को माया द्वारा समस्त अन्तःपुर की स्त्रियों को क्रन्दन करते हुए दिखाया—वे विलाप कर रही थीं 'हे पद्म, हे पद्मलोचन, कुटुम्ब के लिए सूर्यरूपी हे वलभद्र, जगत के लिए भयंकर तुम्हारी अकाल मृत्यु कैसे हो गयी?' उनके केश अस्त-व्यस्त हो गए थे। वे छाती पीट-पीट कर रो रही थीं। उनकी यह अवस्था देखकर लक्ष्मण अत्यन्त दुःखित हो गए। वे बोले, 'हाय, मेरे जीवन के जीवन राम की मृत्यु हो गयी? क्या यम ने छलना द्वारा उनका जीवन हरण किया है?' ऐसा कहते-कहते लक्ष्मण के प्राण निकल गए। कर्म का विपाक सचमुच ही अनुलंघनीय है। उनकी देह स्वर्ण स्तम्भ के सहारे सिंहासन पर अवस्थित थी। मुख खुली अवस्था में लक्ष्मण का शरीर निष्क्रिय स्थिर एवं लेप्पमय मूर्ति-सा लगने लगा। इस प्रकार सहज रूप से लक्ष्मण की मृत्यु होते देखकर दोनों देव दुःखी हो गए। वे पश्चाताप करते हुए परस्पर कहने लगे, 'हमने यह क्या कर डाला? अरे विश्व निर्भर इस पुरुष प्रवर को हमने इस प्रकार मार डाला।' इस भाँति आत्मनिन्दा करते हुए वे दोनों देव-लोक लौट गए।

लक्ष्मण की मृत्यु से अन्तःपुर में हाहाकार मच गया। स्त्रियाँ केश बिखेरकर हृदय भेदी आर्त स्वर में क्रन्दन करने लगीं। उनका रोना सुनकर राम वहाँ दौड़कर गए और बोले, 'अमंगल को ज्ञात किए बिना ही तुमलोगों ने यह कैसा रोना मचा दिया? मैं जीवित हूँ, भाई लक्ष्मण जीवित है फिर यह रोना-धोना कैसा? हो सकता है लक्ष्मण किसी रोग से पीड़ित हो गया है—मैं वैद्य को बुलाकर अभी उसकी चिकित्सा करवाता हूँ।'

तदुपरान्त राम ने अनेक वैद्य और ज्योतिषियों को बुलवाया। यन्त्र-मंत्रों का प्रयोग करवाया, किन्तु लक्ष्मण पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह देखकर राम मूर्च्छित हो गए। कुछ देर पश्चात् उनकी चेतना लौटी। वे उच्च स्वर में विलाप करने लगे। उनका विलाप सुनकर विभीषण, सुग्रीव व शत्रुघ्न आदि भी 'हाय ! हम मारे गए। हमारा सर्वनाश हो गया' इत्यादि कहते हुए उच्चस्वर में रोने लगे। कौशल्यादि माताएँ और पुत्रवधुएँ भी करुण स्वर में क्रन्दन करने लगीं और बार-बार मूर्च्छित होने लगीं। नगर की सभी दुकानों पर प्रत्येक घर प्रत्येक पथ पर समस्त रसहर्ता अद्वैत शोक का साम्राज्य व्याप्त हो गया।

उसी समय लवण और अंकुश राम के निकट आए और उन्हें नमस्कार कर बोले, 'हम अपने इन लघु पिता की मृत्यु से संसार से अति भयभीत हो गए हैं। मृत्यु सभी को अकस्मात् आकर ही उठा लेती है, अतः हमलोगों को पहले से ही परलोक के लिए तैयारी कर लेनी चाहिए। अतः हे पिताजी, आप हमलोगों को दीक्षा ग्रहण का आदेश दीजिए। लघुपिता बिना हमारा घर पर रहना सर्वथा अनुचित है।' तदुपरान्त राम को प्रणाम कर लवण और अंकुश ने अमृत घोष मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली और तपस्या कर मोक्ष गए।

भाई की मृत्यु और पुत्रों के वियोग में राम बार-बार मूर्च्छित होने लगे। और मोह से शोकाकुल होकर कहने लगे—'हे भाई, अभी तक मैंने तुम्हारा कभी अपमान नहीं किया है। फिर तुम क्यों मौन हो गये ? हे भाई, तुम्हारे मौनावलम्बी होने के कारण मेरे पुत्र भी मेरा परित्याग कर चले गए। छिद्र पाकर मनुष्य देह में हजारों भूत प्रवेश कर जाते हैं।'

इस प्रकार उन्मादी की तरह उन्हें बोलते देखकर विभीषणादि एकत्रित होकर उनके निकट गए और गद्‌गद कण्ठ से कहने लगे—'आप जिस प्रकार वीरों में वीर हैं उसी प्रकार धीरों में भी धीर हैं, अतः लज्जाजनक अधैर्य का त्याग कीजिए। अब तो लोक प्रसिद्ध और समयोचित लक्ष्मण का ऊर्द्ध-दैहिक कृत्य अंग संस्कार करिए।'

उनकी ऐसी बात सुनकर क्रोध से राम के ओष्ठ स्फुरित होने लगे। वे बोले, 'हे दुर्जनों, मेरा भाई लक्ष्मण अभी जीवित है। तब तुमलोग ऐसा क्यों कह रहे हो ? कुटुम्ब सहित तुमलोगों का ही अग्निदाह पूर्वक मृत कर्म करना उचित है। मेरा भाई तो दीर्घजीवी है। हे भाई, हे लक्ष्मण, हे वत्स, अब तो तुम शीघ्र बोलो। तुम्हारे नहीं बोलने से दुर्जन लोग ऐसी बातें कर रहे हैं।

बहुत क्षण बीत गए, अब मुझे क्यों और दुःखी कर रहे हो ? हे भाई, इन दुर्जनों के सम्मुख कोप करना उचित नहीं है।'

ऐसा कहकर राम लक्ष्मण को कन्धे पर उठाकर अन्यत्र चले गए। कभी स्नानागार में जाकर लक्ष्मण को स्नान कराते, कभी उनकी देह पर चन्दन का लेप करते, कभी दिव्य आहार लाकर उनके सम्मुख रखते, कभी उन्हें गोद में सुलाकर उनका मस्तक चूमते, कभी उन्हें शय्या पर सुलाकर वस्त्र द्वारा आच्छादित कर देते। कभी उन्हें पुकारते, कभी स्वयं ही उसका प्रत्युत्तर देते। कभी स्वयं ही संवाहक की भाँति उनकी देह पर तेल मर्दन करते। इस प्रकार स्नेह में उन्मन्त होकर वे सब काम भूल गए। ऐसी उन्मत्तता की स्थिति ज्ञात कर, इन्द्रजित और सुन्द राक्षस के पुत्र और अन्यान्य खेचर राम को मारने की इच्छा से उनके निकट पहुँचे। कपटी शिकारी सिंह जब गुफा में सोया हुआ रहता है तो उसे घेर लेते हैं उसी प्रकार अयोध्या में जब उन्मन्त राम वास कर रहे थे तब उनलोगों ने आकर अयोध्या को वृहद सेना द्वारा घेर लिया। यह देखकर राम ने लक्ष्मण को गोद में लेकर वज्रावर्त धनुष पर टंकार दी जो कि अकाल से संवर्त प्रलय की सूचना दे रही थी।

उसी समय महेन्द्र देवलोक के देव जटायु का आसन कम्पित हुआ। वह देवों सहित अयोध्या आया। उसे देखकर इन्द्रजित के पुत्रादि देव अभी भी राम के पक्ष में हैं समझकर वहाँ से भाग गए। तत्पश्चात् वे यही सोचकर उदास हो गए कि देव, आज भी राम का पक्ष ले रहे हैं, राक्षसों का हत्या करनेवाला विभीषण अभी भी राम के साथ है। भय व लज्जा से उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे गृह त्याग कर अतिवेग मुनि से दीक्षित हो गए।

जटायु देव राम के पास आए और उन्हें बोध देने के लिए एक शुष्क वृक्ष को बार-बार सींचने लगे। पत्थर पर खाद देकर उस पर कमल बोने लगे। मिट्टी में असमय बीज बिखेरने लगे। घानी में बालू डालकर उससे तेल निकालने का प्रयास करने लगे। इस प्रकार राम के सामने वे सभी असाध्य कार्यों को साध्य करने का प्रयास करने लगे।

यह देखकर राम बोले, 'अरे ओ मूर्ख, शुष्क वृक्ष को क्यों सींच रहा है ? इसमें फल लगना तो दूर एक अंकुर भी नहीं निकलेगा। तू क्यों पाषाण में कमल लगा रहा है ? यह तो निर्जल मरुभूमि में खाद देकर बीज-वपन करने जैसा है। आज तक क्या कभी किसी ने बालू से तेल निकाला है ? उपाय का सही तरीका नहीं जानने के कारण तुम्हारा समस्त प्रयास वृथा हो रहा है ?'

राम की बात सुनकर जटाय देव हँसकर बोले, 'हे भद्र, यदि आप इतना समझते हैं तब अज्ञानता के चिह्न रूप इस शव को कंधे पर लिए क्यों घूम रहे हैं ?'

देव की बात सुनकर लक्ष्मण की देह को आलिंगन में लेकर राम बोले, 'अरे ओ ऐसी अमंगलकारी बात क्यों बोल रहा है ? दूर हो जा मेरी आँखों के सामने से ?'

जटायु को राम ने जो कुछ कहा वह कृतान्त वदन सारथी ने जो कि देव लोक में देव हुआ था अवधि ज्ञान से ज्ञात किया। वह भी राम को बोध देने के लिए राम के पास आया और एक पुरुष का रूप धारण कर एक स्त्री की मृत देह को कन्धे पर डालकर राम के पास गया। उसे देखकर राम बोले, 'लगता है तुम पागल हो गए हो ? तभी तो स्त्री की मृतदेह को कन्धे पर लिए घूम रहे हो ?'

तब देव ने कहा, 'तुम ऐसा अमंगलकारी वचन क्यों बोल रहे हो ? यह मेरी प्रिय पत्नी है। फिर एक बात और है, तुम स्वयं क्यों इस मृतदेह को लिए घूम रहे हो ? हे बुद्धिमान, यदि तुम मेरी पत्नी को मृत समझ रहे हो तो अपने कंधे पर लादे हुए शव को मृत क्यों नहीं समझते ?' इसी भाँति और भी बातें उसने राम से कही। इससे राम प्रबुद्ध हो गए: तब वे समझ पाए कि लक्ष्मण सचमुच ही मर गया है, वह जीवित नहीं है। राम को वास्तविकता का ज्ञान हो गया है देखकर जटायु और कृतान्तवदन देव राम को अपना परिचय देकर स्वस्थान चले गए।

तदुपरान्त राम ने अनुज का मृत कर्म सम्पन्न किया और दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने शत्रुघ्न को राज्य ग्रहण करने का आदेश दिया किन्तु शत्रुघ्न ने राज्य और संसार से विरक्त होकर राम के साथ ही दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त की। तब राम लवण के पुत्र अनंग देव को राज्य देकर चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष की साधना के लिए तत्पर हुए। श्रावक अर्हद्दास ने मुनि सुव्रत स्वामी की अविच्छिन्न परम्परा में आगत मुनि सुव्रत ऋषि का नाम बताया। राम उनके पास गए। वहाँ जाकर उन्होंने शत्रुघ्न, विभीषण, विराध आदि अनेक राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। राम ने जब संसार का परित्याग किया उस समय अन्यान्य सोलह हजार राजाओं ने भी उन्हीं के साथ दीक्षा ग्रहण की। इसी प्रकार सैंतीस हजार स्त्रियों ने भी दीक्षा ग्रहण की। वे श्रीमती साध्वी के संघ में रहने लगीं।

गुरु चरणों में रहकर उन्होंने पूर्वाङ्ग श्रुतों का अध्ययन कर नाना प्रकार के अभिग्रहों सहित साठ वर्ष तक तपस्या की। तदुपरान्त गुरु आज्ञा से वे अकेले ही विहार करने लगे और निर्भय होकर गिरि-कन्दराओं में रहने लगे। जिस रात्रि वे ध्यानस्थ होकर बैठे थे उन्हें अवधि ज्ञान उत्पन्न हुआ। अवधि ज्ञान के कारण वे चौदह राजलोक को हस्तामलकवत् देखने लगे। अवधिज्ञान से वे यह भी जान गए कि उनके अनुज लक्ष्मण की दो देवों ने कपट द्वारा हत्या की थी और लक्ष्मण अभी नरक में पड़े हुए हैं।

तब राम सोचने लगे—पूर्वभव में मैं धनदत्त नामक वणिक था। लक्ष्मण उस भव में भी वसुदत्त नामक मेरा भाई था। वसुदत्त ने उस जन्म में बिना कोई सुकृत्य किए मृत्यु प्राप्त की। इसीलिए कई जन्म तक वह संसार भ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् इस जन्म में वह मेरा भाई हुआ। यहाँ भी उसने १०० वर्ष कुमारावस्था में, ३०० वर्ष माण्डलिक रूप में, ४० वर्ष दिग्विजय में, ११५६० वर्ष राज्य शासन करते हुए व्यतीत किए। उसकी १२००० वर्षों की आयु किसी भी प्रकार का सत्कार्य किए बिना ही व्यतीत हुयी। इसलिए अन्त में उसे नरक जाना पड़ा। कपटी देवों का इसमें कोई दोष नहीं है। कारण प्राणी मात्र को कर्म विपाक को इसी प्रकार भोगना पड़ता है।

ऐसा विचार कर राम कर्म उच्छेद के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील हो गए। वे विशेष रूप से ममताहीन होकर तप-समाधि में लीन रहने लगे।

एक बार मुनि राम षष्ठ उपवास के बाद पारने के लिए युगमात्र दृष्टि रखते हुए (अर्थात् हस्तमात्र भूमिका अवलोकन करते हुए) संदन स्थल नामक नगर में गए। चन्द्र-से नयनों को आनन्द देने वाले राम को जमीन पर पैदल चलते हुए देखकर नगरवासी अत्यन्त आनन्द के साथ उनके सम्मुख गए। नगर की स्त्रियाँ राम को भिक्षा देने के लिए विभिन्न प्रकार के आहार से पूर्ण पात्र लेकर घर के दरवाजों पर खड़ी हो गयीं। उस समय नगरवासी मारे हर्ष के इतना कोलाहल कर रहे थे कि उस कोलाहल में हाथी आलान स्तम्भों को उखाड़ कर भागने लगे। अश्व भड़क कर उत्कर्ण हुए बन्धन तोड़ने का प्रयत्न करने लगे।

राम उर्जित आहार (जो सबके खाने के पश्चात् बच जाता है) लेना चाह रहे थे। अतः नगरवासी जो आहार उन्हें देना चाह रहे थे उसे लिए बिना ही वे राजप्रासाद में प्रविष्ट हो गए। वहाँ प्रतिनन्दी नामक राजा ने उन्हें उर्जित आहार दिया। राम ने भी उस आहार को विधिवत् ग्रहण किया।

देवों ने वसुधारा आदि पाँच दिव्य प्रकट किए। तदुपरान्त राम जिस वन से आए थे उसी वन को लौट गए।

मेरे जाने से लोकालय में क्षोभ उत्पन्न होता है, लोग एकत्र होते हैं अतः इसी वन में यदि भिक्षा के समय आहार पानी प्राप्त होगा तो पारना करूँगा नहीं तो अनाहारी रहूँगा। ऐसा अभिग्रह लेकर परम समाधि में लीन होकर राम प्रतिमा—चित्र की भाँति स्थिर हो गए।

संयोगवश विपरीत शिक्षा प्राप्त गति सम्पन्न अश्व राजा प्रतिनन्दी को उसी वन में ले गया जिस वन में राम प्रतिमा धारण कर खड़े थे। वहाँ जाकर वह अश्व नन्दनपुण्य नामक सरोवर के कीचड़ में फँसकर स्थिर हो गया। उनका सैन्यदल भी उन्हें खोजता हुआ वहाँ आ पहुँचा। कीचड़ से अश्व को निकालकर राजा ने वहीं छावनी डाल दी। तदुपरान्त स्नानादि से निवृत्त होकर परिवार सहित छावनी में ही भोजन किया। उसी समय ध्यान से निवृत्त होकर राम पारना करने की इच्छा से छावनी में गए। राजा प्रतिनन्दी उन्हें देखते ही उठकर खड़े हो गए। उन्होंने अवशेष अन्न राम को दिया। मुनि राम ने पारना किया। आकाश से पुष्पवृष्टि हुयी।

तदुपरान्त राम ने देशना दी। उस देशना को सुनकर प्रतिनन्दी आदि राजाओं ने सम्यक्त्व सहित श्रावक के बारह व्रत धारण कर लिए। वनवासी देवों द्वारा पूजित होते हुए राम दीर्घ काल तक वहीं अवस्थित रहे। भवसागर को पार करने के लिए वे एक मास, दो मास, तीन मास व चार मास के पश्चात् पारणा करने लगे। कभी पर्यंकासन में, कभी खड़े होकर हाथ प्रलम्बित कर नासाग्र दृष्टि किए, कभी अंगुष्ठ पर तो कभी घुटनों पर भार डालकर खड़े होकर नाना प्रकार के आसनों द्वारा राम ध्यान करने लगे। इसी भाँति वे कठोर तप करते रहे।

एक बार मुनि राम विहार करते हुए कोटिशिला पर जा पहुँचे। यह वही शिला थी जिसे लक्ष्मण ने विद्याधरों के सम्मुख उठायी थी। राम उसी शिला पर प्रतिमा धारण कर क्षपक श्रेणी का आश्रय लिए शुक्ल ध्यानान्तर को प्राप्त हुए। राम की उस स्थिति को सीतेन्द्र नामक इन्द्र बने हुए सीता के जीव ने अवधिज्ञान से देखकर सोचा—राम यदि पुनर्भवी हों तो मैं उनके साथ जाकर रहूँ अतः मैं उन्हें अनुकूल उपसर्ग द्वारा क्षपक श्रेणी से च्युत कर दूँ। क्षपक श्रेणी से च्युत होने पर राम मृत्यु के पश्चात् मेरे मित्र बन जाएँगे। यह सोचलर सीतेन्द्र राम के पास गए। वहाँ जाकर वसन्त विभू-

षित एक वृहद् उद्यान का निर्माण किया। वहाँ कोयेल कुहु-कुहु करने लगी। फूलों की सुगन्ध से मुग्ध बने भ्रमर गुंजन करने लगे और आम चम्पक कंकिल्ल गुलाब और बोरसली के वृक्षों ने कामदेव के नवीन अस्त्र रूप पुष्पावलियाँ को धारण किया।

तत्पश्चात् सीतेन्द्र सीता का रूप धारण कर सखियों के साथ राम के निकट पहुँची और उनसे बोली, 'हे प्रिय, मैं आपकी प्रिय सीता आपके पास आयी हूँ। हे नाथ, उस समय मैंने स्वयं को दुःखी समझकर दीक्षा ग्रहण कर ली थी और आप जैसे प्रेमिक का परित्याग कर दिया था। किन्तु बाद में मुझे बहुत परिताप हुआ। आज इन विद्याधर कुमारियों ने आकर मुझसे कहा तुम दीक्षा त्याग कर पुनः पटरानी बनो। आपके आदेश से हम भी राम की रानियाँ बनेंगी। अतः हे राम, इन सब विद्याधर कुमारियों के साथ विवाह करो। मैं भी आपके साथ पूर्व की भाँति विहार करूँगी। मैंने आपका जो अपमान किया था उसके लिए मुझे भी क्षमा कर दीजिए।'

तत्पश्चात् सीता की माया द्वारा निर्मित वे विद्याधर कुमारियाँ कामदेव को जीवन्त कर देने वाली औषधि-सा गीत गाने लगी। मायावी सीता के वचनों से विद्याधरियों के संगीत से और वसन्त ऋतु से भी राम जरा भी विचलित नहीं हुए। अतः माघ शुक्ला द्वादशी के दिन रात्रि के शेष भाग के समय मुनि राम को केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया। सीतेन्द्र और अन्यान्य देवों ने भक्तिपूर्वक राम का केवलज्ञान महोत्सव मनाया। तदुपरान्त दिव्य स्वर्ण कमल पर बैठकर दिव्य छत्र से सुशोभित राम ने देशना दी।

देशना शेष होने पर सीतेन्द्र ने अपने अपराधों की क्षमा याचना कर लक्ष्मण और रावण की क्या गति हुयी है पूछा। राम बोले, 'इस समय शम्बूक सहित रावण और लक्ष्मण चतुर्थ नरक में है। कारण प्राणी की गति कर्माधीन है। नरकायु पूर्ण कर लक्ष्मण और रावण पूर्व विदेह की अलंकार स्वरूपा विजयवती नामक नगरी में सुनन्द के घर रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न होंगे। उनके नाम जिनदास और सुदर्शन होंगे। वहाँ निरन्तर जिनधर्म का पालन कर वे दोनों मृत्यु के पश्चात् सौधर्म देवलोक में देव बनेंगे। वहाँ से च्युत होकर पुनः वे विजयवती नगरी में ही श्रावक बनेंगे। वहाँ से मृत्यु के पश्चात् हरिवर्ष क्षेत्र में दोनों ही पुरुष देह धारण करेंगे। वहाँ से च्युत होकर पुनः विजयवती में ही कुमारगति राजा और रानी लक्ष्मी के गर्भसे जन्म लेकर जयकान्त और जयप्रभ नामक उनके पुत्र होंगे। वहाँ जिन धर्मानुसार संयम का पालन कर लान्तक नामक छठे देवलोक में देव बनेंगे। तुम अच्युत देव

लोक से च्युत होकर इसी भरत क्षेत्र में सर्वरत्न मति नामक चक्रवर्ती होंगे। वे दोनों लान्तक देव लोक से च्युत होकर इन्द्रायुध और मेघरथ नामक तुम्हारे पुत्र होंगे। वहाँ दीक्षा लेकर तुम मृत्यु के पश्चात् वैजयन्त नामक द्वितीय अनुत्तर विमान में उत्पन्न होंगे। रावण का जीव इन्द्रायुध तीन शुभजन्मों के पश्चात् तीर्थंकर गोत्र कर्म का बन्धन कर तीर्थंकर होगा। तुम उस समय वैजयन्त विमान से च्युत होकर उसके गणधर बनोगे। अन्ततः तुम दोनों मोक्ष जाओगे। लक्ष्मण का जीव जो कि मेघरथ नामक तुम्हारा पुत्र होगा, शुभगति प्राप्त कर पुष्करवर द्वीप के पूर्व विदेह की अलंकार स्वरूप रत्नचित्रा नगरी में चक्रवर्ती बनेगा। चक्रवर्ती का वैभव भोग करने के पश्चात् दीक्षा लेकर अनुक्रम से तीर्थंकर होकर मोक्ष जाएगा।'

यह वृतान्त सुनकर सीतेन्द्र पूर्व स्नेह के कारण उस नरक में गए जहाँ लक्ष्मण दुःख भोग कर रहे थे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा शम्बूक और रावण सिंहादिका रूप धारण कर कुपित बने लक्ष्मण के साथ युद्ध कर रहे थे। तदु-परान्त परमाधार्मिक देव यह कहते हुए 'इस प्रकार क्रोध पूर्वक युद्ध करने वाले तुमलोगों को कोई दुःख नहीं होगा।' —उन्हें उठाकर अग्नि कुण्ड में डाल दिया। वहाँ उन तीनों की देह जलने लगी। उनका समस्त शरीर जल गया। वे उच्चस्वर में पुकारने लगे तो उन परमाधार्मिक देवों ने उन्हें बलपूर्वक आक-र्षण कर उत्तप्त तैलकुम्भी में डाल दिया। वहाँ उनका शरीर तैलाक्त होने पर उनको उठाकर ज्वलन्त चूल्हों पर चढ़े तौवे पर डाल दिया। वहाँ उनका शरीर तड़-तड़ कर विदीर्ण होने लगा। उससे उन्हें भयानक यातना होने लगी।

उन्हें इस प्रकार दुःख पाते देखकर सीतेन्द्र परमाधार्मिक देवों से बोले, 'ओ दुष्टों, क्या तुम नहीं जानते ये तीनों उत्तम पुरुष हैं। हे असुरों, तुमलोग दूर हो जाओ, इन महात्माओं को छोड़ दो।' परमाधार्मिकों के दूर चले जाने पर सीतेन्द्र शम्बुक और रावण से बोले तुमलोगों ने पूर्व जन्म में भयानक दुष्कृत्य किये थे। उसी के फलस्वरूप इस नरक में आना पड़ा। अपने दुष्कृत्य के परिणामों को देखकर भी तुमलोग अब भी अपने पूर्व वैर का परित्याग नहीं कर रहे हो?' इस प्रकार उन्हें समझाकर पूर्व वैर जन्य युद्ध से निवृत्त कर सीतेन्द्र ने लक्ष्मण और रावण को बोध देने के लिए उनका आगामी भव केवली भगवान ने जैसा बताया था सुनाया।

तब वे बोले, 'हे कृपानिधि, आपने हमलोगों को उपदेश देकर बहुत अच्छा कार्य किया है। आपके शुभ उपदेश से हमलोग अपना आजतक का

दुःख भूल गए हैं। किन्तु पूर्व उपार्जित क्रूर कर्मों ने हमें सुदीर्घ काल तक के लिए नरकवास दिया है। इनके विषम दुःख को अब कौन दूर करेगा ?"

उनकी यह बात सुनकर सीतेन्द्र करुणा परवश होकर बोले, 'कहो तो मैं तुम तीनों को नरक से निकालकर देवलोक में ले आऊँ।'

ऐसा कहकर उन्होंने तीनों को उठाया। किन्तु उनकी देह पारे की भाँति कण-कण होकर उनके हाथों में से गिर गयी और पुनः मिल गयी। सीतेन्द्र ने उन्हें पुनः उठाया किन्तु उनका शरीर पुनः पूर्व की भाँति बिखर कर मिल गया। तब वे सीतेन्द्र को बोले, 'हे भद्रिक, आप जब हमको यहाँ से उठाते हैं तो और अधिक कष्ट होता है। अतः हमें यहीं रहने दें और आप देवलोक लौट जाएँ।'

तब सीतेन्द्र उन्हें छोड़कर राम के निकट गए। राम को नमस्कार कर वे फिर शाश्वत अर्हतों के तीर्थ यात्रा करने के लिए नन्दीश्वर द्वीप गए। वहाँ से लौटते समय देवकुरु क्षेत्र में भामण्डल राजा के जीव को युगल रूप में देखा। पूर्व स्नेह के कारण सीतेन्द्र उन्हें भी सदुपदेश देकर स्वकल्प में लौट गए।

भगवान राम केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् २५ वर्षों तक पृथ्वी पर विचरण कर जीवों को बोध देते हुए अपना १५००० वर्षों का आयुष्य पूर्ण कर शैलेशीकरण द्वारा शाश्वत सुख और आनन्दमय स्थान मोक्ष प्राप्त किया।

दसम सर्ग समाप्त

जैन रामायण समाप्त

एकादश सर्ग

जिनके चरण कमल इन्द्रादि द्वारा पूजित होते हैं, कर्म रूप वृक्षों के लिए जो गजेन्द्र तुल्य हैं और जो धरती के लिए कल्प वृक्ष रूप हैं ऐसे भगवान जिनेन्द्र नमि को नमस्कार। इस लोक और परलोक के सभी जीवों के कल्याण के लिए उनका पवित्र जीवन विवृत करता हूँ।

इस जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह में भरत नामक विजय में ऐश्वर्य की निधान रूप कौशाम्बी नामक एक नगरी थी। वहाँ के राजा का नाम था सिद्धार्थ जिनकी आज्ञा आखण्डल (इन्द्र) के आदेश की तरह अखण्ड रूप से पाली जाती थी। उन्होंने प्रार्थियों की समस्त वासनाओं को पूर्ण कर दिया था। उनकी गरिमा, दृढ़ता, औदार्य, शौर्य, बुद्धि और अन्य गुणादि इतने विशिष्ट थे कि लगता, उनमें प्रतिस्पर्द्धा चल रही है। उनका वैभव और

अपरिमित सम्पदा उसी भाँति सबके कल्याण के लिए थी जिस प्रकार पथ के दोनों ओर लगे वृक्षों की छाया सबके लिए होती है। राजहंस जिस प्रकार कमल में ही निवास करता है उसी प्रकार उनका मन रूपी हंस पवित्र कमल रूप धर्म में ही निवास करता था। तदुपरान्त एक दिन उन्होंने संसार से वितृष्ण होकर अपनी समस्त सम्पदा तृण की भाँति परित्याग कर मुनि सुदर्शन से दीक्षित हो गए। तदुपरान्त उत्तम रूप से व्रत पालन कर बीस स्थानक की आराधना द्वारा तीर्थंकर गोत्र कर्म उपार्जन किया और मृत्यु के पश्चात् अपराजित विमान में उत्पन्न हुए।

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मिथिला नामक एक नगरी थी जहाँ के अधिवासी धर्मदृढ़ थे। स्वर्ण और रत्न जड़ित प्राकार, प्रासाद श्रेणियाँ एवं विपणियों को देखकर लगता वह धरती की रत्नमंजूषा है। रत्नजड़ित इसके उद्यान बापी चारों ओर स्थित वृक्ष से झरते हुए पराग से कर्दमाक्त रहते थे। शत्रुओं पर सदैव विजय प्राप्त करने वाले वहाँ के राजा का नाम था विजय जो कि इन्द्र की भाँति अखण्ड प्रताप से वहाँ शासन कर रहे थे। सामान्य सी भृकुटि चढ़ाए बिना, सैन्यवाहिनी को अस्त्र से सज्जित किए बिना, प्रेम जिस प्रकार तरुण हृदय को वशीभूत कर लेता है उसी प्रकार उन्होंने शत्रुओं के हृदय को वशीभूत कर लिया था। वे समुद्र-से गहन, चन्द्र-से प्रियदर्शन, वायु की तरह शक्तिशाली और सूर्य-से प्रतापी थे। उनकी अन्तःपुर के अलंकार-सी रानी थी वप्रा। शील ही उनका अलंकार था। उन्हें देखकर लगता मानो पृथ्वी ने ही रूप धारण कर लिया है। गंगा-सी निर्मल और गहन चन्द्रिका की भाँति दृष्टि को आनन्दितकारी वे अपनी उपस्थिति से ही पृथ्वी को पवित्र कर रही थीं। सत्य, शील आदि समस्त गुण उनमें इतने परिपूर्ण रूप में थे कि वे रमणियों में दृष्टान्त स्वरूप थीं।

अपराजित विमान में ३३ सागरोपम की आयु व्यतीत कर सिद्धार्थ का जीव वहाँ से च्युत होकर अश्विनी नक्षत्र का योग आने पर आश्विन पूर्णिमा के दिन रानी वप्रा के गर्भ में प्रविष्ट हुआ। त्रिलोक में एक दिव्य आलोक व्याप्त हो गया। तदुपरान्त रात्रि के शेष याम में उन्होंने तीर्थंकर जन्मसूचक चौदह महास्वप्न देखे। पिता की इच्छा की भाँति वर्द्धमान वह भ्रूण माँ की कोमलता को ज्ञात कर उन्हें बिना कोई कष्ट दिए क्रमशः वर्द्धित होने लगा। समय पूर्ण होने पर अश्विनी नक्षत्र के योग से श्रावण कृष्णा अष्टमी को नील कमल लांछन युक्त एक स्वर्ण वर्ण पुत्र को रानी वप्रा ने जन्म दिया। सिंहासन कम्पित होने के कारण दिक् कुमारियों ने आकर माता और पुत्र का जन्म कृत्य

सम्पन्न किया। शक्र नव जातक को मेरू पर्वत पर ले गए। वहाँ अच्युतादि देवेन्द्रों ने तीर्थजल से उनका अभिषेक किया। स्नान शेष होने पर शक्र ने त्रिलोकपति की पुष्पादि से पूजा की, दीप प्रज्वलित किया और इस भाँति स्तुति करने लगे—

'हे मोक्षमार्ग के प्रदर्शक, सर्व कर्म विनाशक और राग द्वेष को जीतने वाले, हे भगवन्, आपकी जय हो। मिथ्या मतनाशक, सत्य पथ प्रदर्शक, जगत के शिक्षक हे त्रिलोकपति मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपके कारण ही जगत् को नेतृत्व प्राप्त हुआ है। आप ही समस्त क्षेत्रोंके निरीक्षक हैं, दुष्टोंके दमनकारी और जगत के शुभंकर हैं। धर्म बीज का संग्रह करने वाले, अप्राकृत गुणों के धारक, आगम ज्ञान के प्रवक्ता हे भगवन्, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। अब से मोक्ष मार्ग को प्रदर्शित करने वाले धर्म और अभयदान करने वाले हे त्रिलोक-शरण्य, मैं ने आपकी शरण ग्रहण की है। हे त्रिलोकपति, इस जीवन में आप जिस प्रकार मेरे प्रभु बने हैं उसी भाँति जन्म-जन्म में आप मेरे प्रभु बनें। इसके अतिरिक्त मेरी कोई कामना नहीं हैं।'

इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र ने नियमानुसार प्रभु को वप्रा देवी के पास ले जाकर सुला दिया। सुबह राजा ने कारावास से बन्दियों को मुक्त कर महान आनन्द के साथ पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। जब प्रभु गर्भ में थे तब शत्रुओं ने नगरी को घेर लिया था। और देवी वप्रा प्रासाद शिखर पर चढ़ी थी। भ्रूण के प्रभाव से उन्हें देखने मात्र से ही शत्रुओं ने वश्यता स्वीकार कर ली थी इस कारण नवजातक का नाम रखा—नमि। शक्र द्वारा नियुक्त धात्रियों द्वारा पालित होकर नमि द्वितीय चन्द्र की भाँति वर्द्धित होने लगे।

बाल्यकाल व्यतीत होने पर १५ धनुष दीर्घ प्रभू ने पिता के आदेश से विवाह किया। पच्चीस वर्ष के होने पर प्रभु ने अपने भोगावली कर्मों को ज्ञात कर पिता की आज्ञा से राज्य भार ग्रहण किया। राज्य ग्रहण के पचास हजार वर्ष पश्चात् लोकान्तिक देवों ने आकर उनसे निवेदन किया, 'देव, तीर्थ स्थापित करें।' स्वपुत्र सुप्रभ को सिंहासन पर बैठाकर भगवान नमि ने जृम्भक देवों द्वारा आनीत धन को एक वर्ष तक दान किया।

सुप्रभ और अन्यान्य राजाओं द्वारा एवं शक्र और देवों द्वारा परिवृत होकर प्रभु देवकुरु नामक पालकी में बैठकर सहस्राम्रवन उद्यान में गए। वे उस निकुंज में पधारे जहाँ अजस्र भ्रमरगण कदम्ब पुष्प को चूम रहे थे। माली मल्लिका फूल आहरण कर रहा था। धरती झरे हुए रक्त वर्ण किंशुक

आच्छादित हो गयी थी। शिरीष पुष्पों ने प्रेमी-प्रेमिकाओं के लिए वेदी का निर्माण कर रखा था। फुहारों से उत्क्षिप्त जलकण ग्रीष्मकाल में भी वर्षा ऋतु के आविर्भाव की सूचना दे रहे थे। आषाढ़ कृष्णा नवमी को अश्विनी नक्षत्र के योग में दो दिन के उपवास किए हुए प्रभु ने एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करते ही प्रभु को मन पर्यव ज्ञान की प्राप्ति हो गयी। द्वितीय दिन वीरपुर के राजा दत्त के घर खीरान्न ग्रहण कर उन्होंने पारणा किया। देवों ने रत्नवर्षादि पंच दिव्य प्रकट किए। राजा दत्त ने वहाँ रत्नवेदी का निर्माण करवाया। प्रभु वहाँ से विहार कर ९ मास तक प्रव्रजन करते रहे।

नौ मास के पश्चात् जहाँ उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी उसी सहस्राम्र वन उद्यान में गए और षष्ठ तप के पश्चात् वकुल वृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण कर स्थित हो गए। घाती कर्मों के क्षय हो जाने से अग्रहण शुक्ला ग्यारस को अश्विनी नक्षत्र का योग आने पर प्रभु को उत्कृष्ट केवलज्ञान प्राप्त हुआ। साथ-साथ देवों ने ८० धनुष विराट अशोक वृक्ष समन्वित समवसरण का निर्माण किया। भगवान उस अशोक वृक्ष को परिक्रमा देकर तीर्थ को नमस्कार कर पूर्वाभिमुखी होकर पूर्व दिशा में रखे सिंहासन पर बैठ गए। व्यंतर देवों ने तुरन्त प्रभु के तीन प्रतिरूप बनाकर अन्य तीनों दिशाओं में रखे सिंहासन पर स्थापित किए। चतुर्विध संघ भी यथा स्थान अवस्थित हो गया। सौधर्मेन्द्र ने तब भगवान को प्रणाम कर यह स्तुति की—

'आपके पास केवलज्ञान रूपी तीसरा नेत्र है इसलिए हे त्रिनेत्र मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपके ३४ अतिशय हैं और आपकी वाणी में ३५ प्रकार की अलौकिक शक्ति है। हम आपकी वाणी की उपासना करते हैं कारण वह समस्त भाषानुसारिणी और ग्राम मालव, कौशिकी, आदि गणों से सुमधुर है। गरूड़ को देखने मात्र से जिस प्रकार नागपाश शिथिल हो जाता है उसी भाँति आपको देखने मात्रसे दृढ़बन्ध कर्म भी शिथिल हो जाते हैं। आपको देखकर मनुष्य मोक्षमार्ग की सीढ़ी रूप गुणस्थान के एक-एक पगलिए पर चढ़ता जाता है। आपको स्मरण कर, आपकी वाणी मनन कर, आपका गुणगान कर, आपका ध्यान कर, आपको देखकर आपको स्पर्श कर, आपकी उपासना कर मनुष्य आनन्द प्राप्त करता है। इसीलिए आप आनन्द के कन्द हैं। पूर्व जन्म में मैंने बहुत सुकृत किये थे। इसीलिए भगवन्, आप मुझे अभूतपूर्व आनन्द देकर मेरी दृष्टि के विषयीभूत बने हैं। मेरा स्वर्ग राज्य आदि वैभव चाहे चला जाए किन्तु आपकी वाणी मेरे हृदय से कभी नहीं जाए।' [क्रमशः

संकलन

॥ महिला विकास : शिक्षा और कानून के सन्दर्भ में ॥

विकास की प्रक्रिया में स्त्री-शिक्षा का बड़ा महत्व है। ...अतः शिक्षा का ढांचा, खास और से महिला-शिक्षा का ढांचा इस प्रकार खड़ा किया जाना चाहिये कि उस शिक्षण से स्त्री के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के गुणों का विकास हो। समाज के विकास में योग्य भागीदारी निभाने के लिये वह तैयार हो। पारिवारिक दायित्वों को सफलतापूर्वक वहन करने में वह सक्षम हो। अपने अधिकारों को अपने कल्याण के लिये बने हुए कानूनों को जाने, समझे और उनकी क्रियान्विति के लिये वह जागरुक बने। महिलाओं को ऊँचा उठाने के लिये, उनको शोषण और अन्याय से मुक्ति दिलाने के लिये कई प्रकार के कानून बने हुए हैं, संवैधानिक अधिकार उन्हें मिले हुए हैं। पर उनकी जानकारी न होने से व्यवहारिक स्तर पर उनकी पालना नहीं हो पा रही है। अतः इस दिशा में उन्हें शिक्षित किया जाना आवश्यक है।

विकास में 'वि' विवेक का, 'का' कार्य क्षमता और कर्मठता का, 'स' सहृदयता और सेवा का सूचक है। कहीं ऐसा न हो कि विकास की अंधाधुंध दौड़ में स्त्री अपने विवेक को खो बैठे। वह अपनी कार्य क्षमता को ताक पर रख दे और सेवा भावना से वंचित हो जाय। महिला विकास का अर्थ है वह हर क्षेत्र में स्वावलम्वी बने, उसमें आत्म विश्वास जागे, मानवीय विकास की जितनी भी इकाइयां हैं उनमें वह भागीदार बनें। उसके विकास की प्रक्रिया ऐसी हो कि वह जीवन मूल्यों से जुड़ें, अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं, लोक-अनुष्ठानों, व्रत-त्यौहारों, ललित-कलाओं और नैतिक निष्ठाओं को सुरक्षित रखें। भौतिक विकास की अंध दौड़ में कहीं ऐसा न हो कि कहीं वह अपनी वत्सलता, मर्यादा, शील, संस्कार और करुणा छोड़ बैठे। कानून उसके हितों का संरक्षक बने। ऐसा न हो कि वह उसमें क्रूरता पैदा करे और वह उसकी पारिवारिकता और सामाजिकता को लील दे। महिला-विकास नारी की शाश्वत मानवीय गुणों को सुरक्षित और संवर्द्धित कर ही सार्थक बन सका है।

—डॉ० नरेन्द्र भानावत

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/या

जैन जर्नल || अप्रैल १९९३

इस अंक में है 'Sacred Literature of the Jains' (Albrecht Friedrich Weber), 'The Doctrines of Mahavira' (Satya Ranjan Banerjee), 'Refutation of the Jaina View of Moksa Criticized' (Rabindra Kumar Panda), 'Anekanta-vada - The Theory of Relativity' (Hem Chandra Jain).

णाण सायर || अप्रैल-जून १९९३

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन धर्म और पर्यावरण सन्तुलन' (मुनिश्री नेमिचंदजी), 'जैन दर्शन में योग निरूपण' (गणेश प्रसाद जैन), 'पद्धति : व्यक्तिगत निरीक्षण की' (महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर), 'पद्मपुराण का सुभाषित सरोवर' (नीलम जैन), 'प्रकाशित जैन साहित्य विवरणिका-१' (मेघराज जैन)।

श्रमण || जुलाई-सितम्बर १९९२

इस अंक में है 'जैन धर्म और दर्शन की प्रासंगिकता—वर्तमान परिप्रेक्ष्य में' (डॉ० इन्दु), 'वैदिक साहित्य में जैन परम्परा' (प्रो० दयानन्द भार्गव), 'श्वेताम्बर मूल संघ एवं माथुर संघ : एक विमर्श' (प्रो० सागरमल जैन), 'जैन दृष्टि में नारी की अवधारणा' (डॉ० श्री रंजन सूरिदेव), 'पूर्णिमागच्छ का संक्षिप्त इतिहास' (डा० शिव प्रसाद), 'कवि छल्ह कृत अरडकमल्ल का चार भाषाओं में वर्णन' (भँवरलाल नाहटा), 'द्वादशार नयचक्र का दार्शनिक अध्ययन' (जितेन्द्र बी० शाह), 'जैन कर्म सिद्धान्त और मनोविज्ञान' (रतनलाल जैन)।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : Off. 21039
Res. 21174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :
Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330

Vol. XVII No. 4 TITTHAYARA August 1993

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77